समझना चाहिए कि वे माँस, मछली और अण्डे स्वीकार नहीं करते। शाक, अन्न, फल, दुग्ध और जल मनुष्य के योग्य आहार हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने इनका विधान किया है। इन सात्त्विक पदार्थों के अतिरिक्त हम जो कुछ भी खायेंगे, वह श्रीकृष्ण को भोग नहीं लगाया जा सकता क्योंकि वे उसे स्वीकार नहीं करते। अतएव यदि हम माँस आदि निषिद्ध पदार्थों का अर्पण करेंगे तो यह प्रेममयी भक्ति के प्रतिकूल होगा।

तीसरे अध्याय के तेरहवें श्लोक में श्रीकृष्ण ने वर्णन किया है कि एकमात्र यज्ञ से शेष बचा अन्न ही शुद्ध होता है। अतएव जो जीवन में अभ्युदय और मायाबन्धन से मुक्ति के अभिलाषी हैं उनके लिए केवल यही अन्न खाने योग्य है। जो अपने अन्न का अर्पण नहीं करते, उनको भगवान् ने उसी श्लोक में पाप खाने वाला कहा है। भाव यह है कि उनके द्वारा खाए अन्न का एक-एक ग्रास उनके लिए मायाजाल में अधिक जन्धनकारी सिद्ध होता है। दूसरी ओर, स्वादु शाकाहारी व्यंजन बनाने और श्रीकृष्ण के चित्र अथवा अर्चा-विग्रह को अर्पित करके वन्दनापूर्वक तुच्छ भेंट को स्वीकार करने के लिए उनसे निवेदन करना जीवन की निरन्तर उन्नति, देह की शुद्धि और शुद्ध चिन्तन के योग्य सूक्ष्म बौद्धिक कोशिकाओं के गठन में सहायक है। सबसे अधिक महत्त्व इस बात का है कि भोग प्रेमपूर्वक लगाया जाय। श्रीकृष्ण सम्पूर्ण सृष्टि के एकमात्र स्वामी हैं; अतएव उन्हें भोजन की कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी, जो उन्हें इस रीति से प्रसन्न करना चाहता है, उस मनुष्य के नैवेद्य-अर्पण को वे अंगीकार कर लेते हैं। वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम का भाव ही भोग को बनाने और अर्पण करने की क्रिया का सार है।

निर्विशेषवादी दार्शनिक परमसत्य को हठपूर्वक इन्द्रियशून्य कहते हैं; इसलिए उनके लिए भगवद्गीता का यह श्लोक बुद्धिगम्य नहीं है। उनके लिये यह एक अलंकार-मात्र है अथवा यही सिद्ध करता है कि गीतागायक श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य हैं। सत्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य इन्द्रियों से युक्त हैं। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि उनकी प्रत्येक इन्द्रिय अन्य सब इन्द्रियों का कार्य कर सकती है। श्रीकृष्ण को अद्वय परतत्त्व इसी अर्थ में कहा जाता है। इन्द्रियों के बिना वे सब ऐश्वर्यों में पूर्ण नहीं कहलाते। सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने कहा है कि वे अपरा प्रकृति में सम्पूर्ण जीव-समूह का गर्भाधान करते हैं; ऐसा प्रकृति पर उनके दृष्टिपात से होता है। अतएव इस संदर्भ में श्रीकृष्ण का भोग अर्पण करते हुए भक्त की प्रेममयी प्रार्थना को सुनना भोग को आरोगना ही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि वे परतत्त्व हैं, अतएव उनके सुनने, भोजन करने और चखने में कोई भेद नहीं है। जो भक्त श्रीकृष्ण को ठीक उसी प्रकार मानता है, जैसा श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने विषय में वर्णन किया है, अर्थात् जो श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में मनोधर्मी नहीं करता है, वही यह समझ सकता है कि अद्वय परतत्त्व श्रीकृष्ण अर्पित भोजन को खाते हैं और इससे उन्हें आनन्द की अनुभूति भी होती है।